INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS

Volume 3, Issue 10, October 2015 ISSN: 2320-2882 (Online)

ORIGINAL ARTICLE

Impact Factor: 0.345(GIF)

www.iicrt.net

मौर्य–युगीन अश्वारोही सेना

उत्कर्ष राव

शोध छात्र, इन्दिरा गाँधी पी0जी0 कालेज, गौरीगंज, अमेठी।

शोध सार :

कौटिल्य का अर्थशास्त्र मौर्य युग के अश्वारोही सेना के आकार-प्रकार आदि के विषय में परिपूर्ण सूचना देने में सक्षम ही नहीं अपितु अश्व की जातियों, श्रेणियों, कार्यकलापों आदि के विषय में समुचित जानकारी प्रस्तुत करता है | इस युग में अश्वों का एक पृथक विभाग होता था जिसका एक अध्यक्ष होता था | इसे अश्वाध्यक्ष के नाम से जाना जाता था | ये अश्वाध्यक्ष भेंट में आये हुए, ख़रीदे हुए, युद्ध में प्राप्त किये हुए, गिरवी रूप में रखे हुए, घोड़ो के वर्ण, आयु, लक्षण आदि का विवरण रखते थे | उनका आहार नियमित करना, प्रशिक्षित करना तथा पशु चिकित्सकों द्वारा उनके रोगों की चिकित्सा का प्रबंध भी इन्हें ही करना पड़ता था | इसके अतिरिक्त घोड़ों के समसामयिक संस्कार भी होते थे | मेगस्थनीज के वर्णन से पता चलता है कि राज्य की ओर से घोड़ो की अच्छी नस्ल तैयार करने के लिए शालाएं या ब्रजभूमियां थी, जिनके लिए अधिकारी नियुक्त थे | आधुनिक सैन्य प्रशिक्षण की भांति मौर्य कालीन सैन्य बल प्रशिक्षण में कम न था | फलतः मौर्य युग के राज्य विस्तार में प्रमुख हाँथ अश्वारोही सैनिकों का रहा |मौर्य शासन काल में राजसत्ता का वैभव बहुत बढ़ गया था | सैन्य संगठन अत्यंत सुव्यवस्थित था | अश्व सैन्य संगठन की विशेष मान्यता थी परन्तु भारतीय अश्व युद्ध कला विदेशी अश्व युद्ध कला की तुलना में समुन्नत नहीं थी | मौर्य युगीन सैनिक संगठन में यूनानियों से सम्पर्क के कारण युद्धों में अश्व सेना के महत्व को प्रथम बार गंभीरता पूर्वक स्वीकार किया गया |

मुख्यशब्द : अश्वारोही सेना , कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अश्वाध्यक्ष, नीराजना संस्कार, मुद्राराक्षश, समरांगण |

मौर्य काल में सेना के महत्व में वृद्धि दिखाई देती है। अश्वारोही सेना की गतिशीलता और तीव्रता ने समसामयिक शासकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया। फलतः रणक्षेत्र में दिन प्रतिदिन प्रमुख स्थान पाती गई। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' मौर्य युग के अश्वारोही सेना के आकार–प्रकार आदि के विषय में परिपूर्ण सूचना देने में सक्षम

ही नहीं अपितु अश्व की जातियों, श्रेणियों, कार्यकलापों आदि के विषय में समुचित जानकारी प्रस्तुत करता है। सेना के अन्य अंगों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था।

अश्वाधिकारी–

इस युग में अश्वों का एक पृथक विभाग होता था जिसका एक अध्यक्ष होता था। इसे अश्वाध्यक्ष के नाम से जाना जाता था। चन्द्रगुप्ता मौर्य के अश्वसेनापति का नाम पुरूषदत्त था।[1] कौटिल्य ने अश्वाध्यक्ष के अनेक कार्यों को बताया है। ये भेंट में आये हुए, खरीदे हुए, युद्ध में प्राप्त किये हुए गिरवी रूप में रखे हुए, घोड़ों के वर्ण, आयु, लक्षण आदि का विवरण रखते थे।[2] इन सबको ध्यान में रखकर घोड़ों को अलग–अलग श्रेणियों में विभक्त करना पड़ता था। उनका आहार नियमित करना पड़ता था। उन्हें निकालने, प्रशिक्षित करने तथा पशु–चिकित्सकों द्वारा उनके रोंगों की चिकित्सा का प्रबन्ध भी अश्वाध्यक्ष को ही करना पड़ता था।[3] यह अश्वों का सर्वोपरित अधिकारी था।

अश्वाध्यक्ष के अतिरिक्त अन्य कर्मचारी भी होते थे जो अश्व की सेवा हेतु नियुक्त थे। इनमें घोड़ों की चिकित्सा करने वाले चिकित्सक का स्थान प्रमुख था। वे अश्वों के स्वास्थ्य की देख–भाल करते थे और ऋतुओं के अनुसार उचित आहार के सम्बन्ध में परामर्श देते थे। सूत्र ग्राहक (लगाम आदि पकड़ कर घोड़े को घुमाने वाला कर्मचारी), यावसिक (ऋतुओं के अनुसार उचित घास आदि आहार देने वाला), विधापाचक (घोड़ों के लिए चावल, मूँग, उड़द आदि पकाने वाला), स्थानपाल (घोड़े की रहने की जगह को साफ करने वाला कर्मचारी), केशकार (घोड़े के बालों को यथास्थान काटकर या खुरेरा आदि फेर कर ठीक करने वाला) और जांगलीविद् (जंगली, जड़ी बूटियों को जानकर घोड़ों की चिकित्सा करने वाला–विष वैद्य)– ये सब कर्मचारी नियत समय से अपने–अपने कार्यों को करते थे।[4] उक्त विवरण से सिद्ध होता है कि मौर्य युग में अश्व सेना पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

अश्व खाद्य व्यवस्था–

तत्कालीन घोड़ों के भोजन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अश्वों की क्षमता तथा शारीरिक आकार के अनुसार उन्हें खाद्य पदार्थ दिया जाता था। ऋतु परिवर्तन और विभिन्न परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ भोजन में परिवर्तन की व्यवस्था थी। जब कोई घोड़ी प्रसव करें उस समय से तीन दिन तक एक प्रस्थ (अंजली) घी दिये जाने का वर्णन है। तदन्तर दस दिन तक प्रतिदिन एक प्रस्थ सत्तू और चिकनाई मिली हुई औषधि (काढ़ा आदि) पीने के लिए दिये जाने की व्यवस्था थी। तत्पश्चात् आधे पके हुए जौ आदि का सांदा (पखेव), घास तथा ऋतु के अनुसार अन्य हरा चारा दिये जाने का प्राविधान था। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन सैन्य–अश्वों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दस दिन बाद बच्चे को सत्तू का कुडुब (अंजुली का चौथाई भाग) जिसमें चौथाई घी मिला हुआ हो और फिर छः माह तक एक प्रस्थ दूध आहार के लिए दिये जाने का वर्णन है।[5] इससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन शिशु–अश्वों पर कम ध्यान न था। इनके खाद्य सामग्री की विशेष व्यवस्था की जाती थी ताकि शारीरिक दृष्टि से पुष्ट

और सुन्दर शरीर वाले अश्व बनें। सम्भवतः इन्हें नियत समय पर भोजन दिया जाता था। इससे मौर्य युगीन अश्वों की विशिष्टता की सूचना मिलती है।

अश्वशाला –

'अर्थशास्त्र' में अश्वों के रहने के स्थान को अश्वशाला कहा गया है। अश्वशाला का पर्याप्त वर्णन कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। घोड़ों की संख्यानुसार लम्बी (जितने भी घोड़े हों, वे जितने स्थान में बंध सकें, उतनी लम्बी) और घोड़ों की लम्बाई से दुगुनी चौड़ी और चार द्वारों से युक्त, घोड़ों को ले चलने या घुमाने के लिए पर्याप्त स्थान वाली, वरांडे से युक्त, दरवाजे के दोनों ओर बैठने के स्थन वाली घुड़साल बनाने का वर्णन है। घोड़े की लम्बाई, चौड़ाई के अनुसार चौकोर, चिकना फट्टा जिसमें नीचे बिछा हुआ हो, घास, आदि खने के लिए लकड़ी का नाद बना हुआ हो, पेशाब और लीद करने के लिए पृथक–पृथक व्यवस्था वाली अश्वशाला का उल्लेख है। प्रायः राजमहल के उत्तर–पूर्व की ओर अश्वशालाएँ होती थीं।[6] सम्भवतः उत्तर ओर पूर्व दिशा से आक्रमण होने की सम्भावना रही होगी अथवा पूर्व दिशा में राज्य विस्तार की योजना रही होगी। इसके अतिरिक्त उत्तर और पूर्व की ओर से घुड़साल में शुद्ध वायु के दृष्टिकोण से निर्मित करने को बताया गया होगा। अश्वशाला की लम्बाई चौड़ाई का विशेष ध्यान दिया जाता था ताकि अश्व आसानी से अपनी गति–विधि कर सके। दरवाजों के किनारे छोटे चबूतरों तथा वरांडे का भी वर्णन है। दरवाजों के किनारे बैठने की जगह साइसों या द्वाररक्षकों के लिए बनाई गई होगी। वरांडे में अश्वों को गर्म के दिन में बॉधने या वर्षा में घुमाने का कार्य किया जाता रहा होगा। घोड़ों की अधिकता के कारण यदि पूर्व और उत्तर में पर्याप्त स्थान न हो तो अन्य उचित दिशा के वरण कउ ल्लेख मिलता है। प्रसव करने वाली घोड़ियों, सांड़ घोड़ों और किशोर (छः माह से तीन वर्ष तक) बछेड़ों को एक दूसरे से पृथक बांधने को कहा गया है।[7] अस्तबल सफाई तथा स्वास्थ्य के नियम को पूरी तरह ध्यान में रखकर बनाए जाते थे।[8]

उत्तम नस्ल के घोड़ों के प्रजनन की व्यवस्था–

मेगस्थनीज के वर्णन से पता चलता है कि राज्य की ओर से घोड़ों की अच्छी नस्ल तैयार करने के लिए शालाएँ या ब्रजभूमिया थी', जिनके लिए अधिकारी नियुक्त थे।[9] जो घोड़े शक्तिशाली होते हुए भी युद्ध में प्रयोग करने के योग्य न हों, उन घोड़ों को नगर तथा जनपद निवासी पुरूषों की घोड़ियों में सन्तति के लिए सांड़ बना कर रखा जाता था। प्रसव करने वाली घोड़ियों को एकान्त स्थान में रखा जाता था।[10] यह इसलिए किया जाता होगा कि भारत वर्ष में भी अच्छी नस्ल के घोड़ों का प्रजनन हो। अच्छे नस्ल के घोड़े भारत वर्ष से बाहर उपलब्ध थे। इस प्रकार से प्रजनित अश्व युद्ध में सक्षम सिद्ध होते रहे होंगे।

घोड़ों के कार्य एवं गति (चाल)–

कौटिल्य ने घोड़ों के कार्य एवं उनकी गति का निरूपण किया है। तीक्ष्ण (तीव्र चाल) एवं मद् (मध्यम गति) घोड़ों को सान्नाह्य[11] और औपवाह्य[12] में प्रयुक्त किये जाने को कहा गया है। औपवाह्य अर्थात् सवारी या खेल में काम आने वाले घोड़ों की चाल के पांच भेद बताए गये हैं– वल्गन, नीर्गत, संघन, धीरण और नरोष्ट्। गोल मण्डलाकार घूमने को बल्गन कहते हैं। यह छः प्रकार का होता है– औपवेणुक (एक ही साथ के गोले में घूमना), वर्धमान (उतने ही घेरे में कई बार घूमना), यमक (बराबर बराबर के दो घेरों में एक ही साथ घूम जाना), आलीढप्लुत (एक पैर को सिकोड़ कर और दूसरे को फैला कर छलांग मारने के साथ घूम जाना), पूर्वंग (शरीर के अगले भाग के आधार पर घूम जाना) और त्रिकचाली (त्रिक अर्थात् पृष्ठ वंश और पिछली दो टांगों के आधार पर घूम जाना)। इस तरह छः प्रकार का बल्गन होता है। जब सिर और मान में किसी प्रकार का कम्पन आदि का विकार न हो पाये, तो उस बग्लन गति विशेष को 'नीचर्गत' नाम से जाना जाता है। यह सोलह प्रकार का होता है– प्रकीर्णक (सब चालों का समिश्रण), प्रकीर्णात्तर (सब चालों के मिले होने पर भी एक का मुख्य होना) निष्ण्ण (पृष्ठ भाग को निश्चेष्ट करके किसी विशेष चाल को निकालना अर्थात् उस चाल के होने पर पीठ आदि पर किसी प्रकार का कम्पन न होना), पार्श्वानुवृत्त (एक और को तिरछा करना), शरभ क्रीडित (शरम एक जवान हाथी) की तरह क्रीड़ा करते हुए चलना) शरमप्लुत (शरम की तरह कूद कर चलना), पंचपाणि (तीन पैरों को पहले एक साथ रखकर फिर एक पैर को दो बार रखकर चलना), सिंहायत (सिंह के समान लम्बा डग भर कर चलना), श्रिलंगिंत (शरीर के अगले हिस्से को झुकाकर चलना), बृंहित (शरीर के अगले हिस्से को ऊँचा करके चलना) और पुष्पामिकीर्ण (गो मूत्र के समान इधर–उधर हो कर चलना)।[13]

कूदने की क्रिया को लंघन कहा गया है। यह सात प्रकार का होता है– कपिप्लुत (बंद की तरह कूदना), एक पादप्लुत (तीन पैरों को समेट कर केवल एक पैर के सहारे कूदना), एणप्लुत (हरिण की तरह कूदना), कोकिल संचारी (कोयल की तरह फुदक कर कूदना) और बकचारी (बगुले की तरह बीच में धीरे चल कर फिर एक साथ अचानक कूदना)।

धीरे–धीरे चली जाने वाली, ढुलकी, सरपट चालों का नाम धौरण है। इसके निम्नलिखित आठ भेद हैं– कांग (कंग अर्था बगुले की तरह चलना), यारिकांग (बत्तख या हंस आदि की तरह चलना), मायूर (मयूर की तरह चलना)। अर्धमायूर (कुछ–कुछ मोर की तरह चलना), नाकुल (नेवल की तरह चलना), अर्धनाकुल (कुछ–कुछ नेवले की तरह चलना), वाराह (वराह अर्थात् सूअर की तरह चलना) और अर्धवाराह (कुछ–कुछ सूअर की तरह चलना)।[14] सिखाये हुए इशारों के अनुसार घोड़ों का चलना 'नरोष्ट्र' कहलाता था।[15]

इसके अतिरिक्त रथ में जोते जाने वाले अधम, मध्यम और उत्तम घोड़ों की गति (चाल) तीन प्रकार की बताई गई है– विक्रम (तीव्र गति), भद्राश्ववास (मध्यम गति) और भारवाह्य (जिस प्रकार कोई पुरूष कंधे पर भार रख कर तेज जाता है)। भिन्न–भिन्न

घोड़ों के चलने का क्रम भिन्न–भिन्न होता है– कोई–कोई घोड़े लगातार धीरे ही चलते हैं, कोई चौकन्ना होकर इधर–उधर को फिरता हुआ सा, कोई कूद कर तथा कोई पहले तेज और कोई बाद में तेज चलता है, इन सब तरह की चालों का नाम धारा है।[16]

आधुनिक सैन्य प्रशिक्षण की भाँति मौर्य कालीन सैन्य बल प्रशिक्षण में कम न था। प्रत्येक परिस्थितियों से जूझने के लिए विशेष प्रकार की व्यवस्था थी। हर प्रकार के चालों पर अधिकार रखना तत्कालीन सैन्याधिकारी एवं प्रशिक्षक का प्रमुख कर्तव्य था। फलतः मौर्य युग के राज्य विस्तार में प्रमुख हाथ अश्वारोही सैनिकों का रहा। चालों के उपरि लिखित विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मौर्य–युग अश्व प्रशिक्षण एवं अश्व पालन में विशेष रूचि रखता था। इसलिए उक्त युग युद्ध एवं विजय के इतिहास में भी अग्रणी रहा।

उत्तम घोड़े का लक्षण–

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में घोड़ों के लक्षण और उत्तम घोड़ों की पहचान का सविस्तार वर्णन किया है। उत्तम घोड़े का मुख बत्तीस अंगुल और लम्बाई पांच मुख अर्थात् एक सौ साथ अंगुल का होना चाहिए। उत्तम घोड़ों के परिमाण से तीन अंगुल कम मध्यम घोड़े और उससे तीन अंगुल कम अधम घोड़े की पहचान है।[17] उत्तम घोड़े की मोटाई सौ अंगुल होती है।[18] इसका पांचवा हिस्सा कम अर्थात् अस्सी अंगुल मोटाई का परिमाण मध्यम घोड़े का तथा इसका पांचवा हिस्सा कम अर्थात् चौसठ अंगुल अधम घोड़े की मोटाई होती है।[19] उपर्युक्त विधि से अधम, मध्यम और उत्तम घोड़े को आसानी से पहचाना जा सकता है।

घोड़ों के समसामयिक संस्कार–

घोड़ों में उत्पन्न हुए उपद्रवों को शांत करने के लिए तथा बल वृद्धि के लिए नीराजना संस्कार किया जाता था। इसके अतिरिक्त यात्रा के प्रारम्भ में संक्रामक रोग फैलने पर उसके शान्ति के लिए भी यह संस्कार कराया जाता था। यह (नीराजना) संस्कार आश्विन महीने नवमी तिथि में कराये जाने का विधान था। अमावस्या पर्वों में घोड़ों के निमित्त भूतों को बलि और शुक्ल पर्व अर्थात् पूर्णमासी में स्वस्तिवाचन पढ़ा जाता था।[20] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में भूत–प्रेतों की मान्यता थी, जो अश्वों को अनेक रूपों में परेशान करते थे। इनके शान्ति एवं समाप्ति के लिए कल्याणकारी श्लोक एवं मंत्र पढ़े जाते रहे होंगे। यह घोड़ों की सुरक्षा और महत्व का परिचायक था, क्योंकि अब अश्वों पर ही जय–विजय आधारित थी।

उत्तम घोड़ों वाले प्रदेश–

तत्कालीन उत्तम घोड़े सैन्य कार्य हेतु सुरक्षित थे। कम्बोज (काबुल देश में उत्पन्न) के घोड़े शक्तिशाली द्रुतगति वाले, अतएव संग्राम योग्य होते थे। सैन्धव (सिन्धु देश में उत्पन्न अश्व), आरट्टज (पंजाब) और वनायुज (अरब) के घोड़े भी उत्तम कोटि की मान्यता रखते थे। इसी प्रकार बाह्लोक, पापेयक, सौवीरक (सिन्धु या सिन्धु डेल्टा) और तैतल के अश्व मध्यम श्रेणी के माने जाते थे। इसके अतिरिक्त सर्वत्र प्राप्त अश्व अधम दर्जे में आते थे।[21] जैन उत्तराध्यायन सूत्र में कम्बोज के अश्वों का वर्णन है, जो चाल में अन्य अश्वों से आगे जाते थे और शौर या हलचल में विचलित नहीं होते थे।[22] डॉ0 आर0के0 मुखर्जी ने सम्भावना व्यक्त की है कि चन्द्रगुप्त के घुड़सवार सेना के घोड़ों का आप्रवेशन (भर्ती) का उल्लेख उपर्युक्त स्थलों से लाये गये अश्वों से होता था।[23] सम्भवतः

भारतीय वातावरण (मौसम इत्यादि) अश्वों के लिए उपयुक्त न होता हो क्योंकि अभारतीय घोड़े अधिक शक्तिशाली एवं सुन्दर शरीरधारी होते हैं। एक अन्य कारण हो सकता है जिससे भारतीय अश्व समुचित विकास न कर सकें। भारतीय नरेश अश्वों के स्थान पर हस्तियों को सैन्य कार्य के लिए सक्षम समझते थे, इसलिए अश्वों पर उनका ध्यान नहीं गया होगा। आपसी क्षेत्रीय युद्ध हस्ति सेना से ही निर्णित होते रहे होंगे परन्तु जब बाहरी आक्रमणकारी आये तो अश्वां की महत्ता का ज्ञान हुआ होगा। सम्भवतः यही कारण होगा कि अभारतीय अश्व सैन्य सम्बन्धी कार्यों में अधिक सक्षम थे। 'मुद्राराक्षस' में सिन्धु देश के राजा सिन्धुषेण तथा पारसीक (फारस) देश के अधिपति मेघ का वर्णन है, जिसकी सेना विशाल घोड़ों वाली थी।[24] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन पारसीक एवं सैन्धुक (सिन्धु देश के) अश्व अत्यन्त बलशाली होते थे एवं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे।

प्रशिक्षण–

मैगस्थनीज और एरियन जैसे यूनानी इतिहासकारों के अनुसार भारतवासी अश्व–प्रशिक्षण में दक्ष थे। अल्पायु से ही उनको इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, जिससे वे घोड़ों के सिद्धहस्त नियंत्रण एवं कुशल प्रशिक्षण में प्रवीण हो सकें। तत्कालीन प्रशिक्षकों ने युद्ध प्रशिक्षण को और अत्यधिक ध्यान दिया। मैगस्थनीज ने चौथी शती के भारतीय व्यवसायिक प्रशिक्षकों का उल्लेख किया जो शैशव काल से ही अश्वों के प्रशिक्षण एवं अभ्यास की व्यवस्था करते थे।[25] ग्रीम दूत कहता है कि इस कार्य के लिए मजबूत हाथ और साथ ही साथ अश्वों के विषय में पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता होती है। भारतीय अश्व प्रशिक्षक लगाम से घोड़ों को नियंत्रित करते थे जिससे कि घोड़ा निश्चित कदम और सवार के मनचाहे रास्ते पर जा सके। वे न तो तेज घुंडी से उसके जीभ को और न ही मुँह के तलवे को कष्ट देते बल्कि तेल घुंडी मनचाहे रास्ते की नियंत्रक थी। अभ्यस्त व्यवसायिक प्रशिक्षक अश्वों को गोल चक्कर में छलांग लगाने एवं अन्य कार्यों को करने के लिए प्रेरित करते थे। इस प्रकार अश्वों को पूर्ण प्रशिक्षित कर सैन्य–कार्य योग्य बनाते थे।[26] उपर्यक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि मौर्य युगीन नरेश सैन्य प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान देते थे। इसी कारण भारत वर्ष में एक स्थाई और विशाल साम्राज्य की स्थापना हो सकी। प्रशिक्षित अश्व युद्ध स्थल में अपने कला प्रदर्शन से शत्रुओं पर सहजता से विजय प्राप्त करने में सहायक होते थे।

अश्वानुकूल युद्ध–स्थल –

कौटिल्य ने रणक्षेत्र में अश्वों के अनुकूल भूमि का वर्णन किया है। रथ के अनुकूल भूमि घोड़ों के लिए भी उपयुक्त बताई गई है। इसके अतिरिक्त घोड़े के लिए निम्नांकित अन्य भूमियों का वर्णन भी उपलब्ध है– छोटे–छोटे कंकड़ तथा वृक्षों से युक्त छोटे लांघने योग्य गड्ढों से युक्त तथा दरड़ों वाली भूमि को घोड़ों के लिए विशेष उपयुक्त बताई गई है।[27] जिस भूमि में आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे लौटने के लिए दुगुनी सुविधा हो और जो कीचड़, जल, दलदल तथा कंकड़ीली मिट्टी से रहित होती है, वह भूमि घोड़ों के लिए अतिशय अनुकूल होती है।[28] वैसे अश्व जल युक्त भूमि तथा पथरीले पहाड़ों पर भी तीव्रगति से दौड़ता है। लगभग सभी परिस्थितियों में अश्व सक्षम सिद्ध

होता है। इसी को ध्यान में रखते हुए विदेशियों ने अश्वों को ही युद्ध के लिए उपयुक्त पशु चुना होगा।

अश्व–सैन्य संगठन –

यद्यपि कौटिल्य विरचित अर्थशास्त्र में अश्वारोही सैनिक संगठन का समुचित निरूपण नहीं किया गया है, परन्तु अन्य साक्ष्यों से इस दिशा में यत्किंचित प्रकाश पड़ता है। मौर्य शासन काल में राजसत्ता का वैभव बहुत बढ़ गया था। सैनिक शक्ति भी राज्य की रक्षा के लिए बहुत बढ़ गई थी। चन्द्रगुप्ता मौर्य की सेना में लगभग छः लाख पैदल, तीस हजार घुड़सवार तथा नौ हजार हाथी थे। घोड़ों के अलावा ऊँट तथा गधे भी सवार सेना में थे। सेना की टुकड़ियों का बड़ा अच्छा विभाजन था। दो सौ पैदल सिपाही, दस हाथी तथा पचास घुड़सवार सेना की सबसे छोटी टुकड़ी होती थी, इसके अधिकारी को पादिक कहते थे। दस पादिक पर सेनापति और दस सेनापति पर एक नायक होता था। मैगेस्थनीज ने तीस सदस्यों की एक समिति का उल्लेख किया है जो समूचे सैनिक विभाग की देख–रेख करता था। सीमा पर भी सैन्य टुकड़ियों के वर्णन के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।[29] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन सैन्य संगठन सशक्त एवं सुनियंत्रित था। पोरस के विरूद्ध सिकन्दर की अश्वारोही सेना अत्यन्त सुसंगठित, सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित थी।[30] झेलम युद्ध में पोरस के चार हजार शक्तिशाली अश्व सेना होने का वर्णन है। मगध नरेश के पास तीस हजार अश्वारोही सेना का विवरण मिलता है। आंध्रों के पास दो हजार तथा कलिंग के पास एक विशाल अश्वारोही सैनिकों के संगठन का उल्लेख प्राप्त होता है।[31] इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन नरेशों ने अश्व सैन्य संगठन पर ध्यान दिया था।

समरागंण में अश्वारोही सेना का उपयोग–

'अर्थशास्त्र' में अश्वारोही सैनिकों के कार्यों का निरूपण किया गया है। कौटिल्य ने घोड़े द्वारा भूमि विषय की बात कहीं है। भूमि में छिपे हुए शत्रु के बल को हटाना, 'भूमि विचय' या भूमि का संशोधन कहलाता है। इसी प्रकार सेना के निवास स्थानों में से उपद्रव को दूर करना 'वास विचय' और जंगली रास्ते में से चोरों आदि को हटाना 'वन विचय' कहलाता है। यह आधुनिक पेट्रोलिंग से मिलता है, क्योंकि इसमें भी शत्रु को विनष्ट करने के लिए कुछ सैनिकों को पहले भेजा जाता है, जो अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर देते हैं अथवा उनकी स्थिति का पूरा–पूरा अध्ययन कर अपनी सेना को बताते हैं। विषम (जहाँ पर शत्रु आक्रमण न कर सके), तोय (जहाँ जल से भरे तालाब आदि हों), तीर्थ (नदी आदि उतरने की जहाँ से अच्छी सुविधा हो, जहाँ वायु अच्छी तरह आ जा सके) और रश्मि (जहाँ सूर्य का प्रकाश पहुचने में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे) आदि स्थलों को अपने अधिकार में लेना अश्वारोही सेना का कार्य था। इसके अतिरिक्त शत्रु के वीवध (उसके देश से अपने देश जीविका योग्य द्रव्यों का आना) और आसार (शत्रु के मित्र की सेना का आना) का नाश तथा अपने वीवध और आसार की रक्षा करना, छिपकर प्रविष्ट हुई शत्रु सेना की सफाई करना तथा अपनी सेना में गड़बड़ हो जाने पर उसकी ठीक–ठीक स्थापना करना, शत्रु की सेनाको हटाना, शत्रु की सेना पर पहले ही प्रहार करना, शत्रु द्वारा पकड़े हुए अपने योद्धाओं को छुड़ाना, अपने सैन्य मार्ग पर शत्रु सेना के चले जाने पर उनका अनुसरण करना, शत्रु के कोष और राजकुमारों का

अपहरण करना, पीछे तथा सामने की ओर आघात् अर्थात् आक्रमण करना, अश्वों के कर्म कहे गये है।[32]

इसके अतिरिक्त रिजर्व और उसद विभाग की रक्षा, सेना में अनुशासन की व्यवस्था करना, शत्रु सेना को तितर–बितर करना भी अश्वारोही सेना का कार्य था। एक प्रकार से आधुनिक आर्मर्ड फाइटिंग वैहकिल के रूप में कार्य करना अश्व सेना का कर्तव्य था।[33] घुड़सवारों के आकस्मिक प्रघात के तरीके निम्न थे– सीधे भिड़ जाना, घूम कर जाना, बीच से होकर निकलना, वापस लौट कर हमला करना, शत्रु के पड़ाव को अस्त व्यस्त करना, सैन्य दलों को एकत्र करना, मोड़ खाना, चक्कर बनाना, पृष्ठ भाग को शत्रु से मुक्त करना, सामने से, बाजुओं से और पीछे से शत्रु का पीछा करना,त्र पराजित, पीछे हटती हुई सेना की रक्षा करना।[34] इसके अतिरिक्त पहाड़ी क्षेत्र तथा खाइयों में भी अश्व सेना अपनी कला में प्रवीण होती थी। अश्व सेना की तीव्र गति एवं तत्काल कार्य करने की क्षमता ही इन उपरोक्त कार्यों को सफल बनाने में सहयोगी थी।

व्यूह तथा युद्ध –

तत्कालीन व्यूह रचना में घुड़सवार सैनिकों के साथ अन्य तीन प्रकार के सैनिक नियुक्त किये जाते थे। उस समय घोड़े विभिन्न प्रकार के युद्धों में निपुण थे। ये निम्नांकित हैं– अभिसृत (अपनी सेना से शत्रु की सेना की ओर जाना), परिसृत (शत्रु की सेना को छिन्न–भिन्न करके सुई की तरह चले जाना), अतिसृत, अपसृत (उसी मार्ग से फिर दुबारा निकलना), बहुत से घोड़ों के द्वारा शत्रु की सेना को उन्माथित करके फिर उनका इकट्ठा हो जाना, गोभूत्रिका (गो के मूत्र की तरह वक्र गति से जाना), मण्डल (शत्रु की सेना के किसी एक देश को काट कर चारों ओर से उसे घेर लेना), प्रक्रीर्णिका (सभी चालों को मिला कर प्रयोग करना), नष्ट होती हुई सेना को आगे–पीछे तथा इधर–उधर से घूम कर रक्षा करना (भग्न रक्षा), छिन्न–भिन्न शत्रु की सेना का पीछा करना।[35] इस प्रकार तत्कालीन व्यूह रचना तथा युद्ध सम्बन्धी कार्य–कलापों में अश्व सेना ही प्रमुख थी। यह अश्वारोही सेनाओं की निपुणता एवं कुशलता का परिचायक है।

अश्वारोही सेना के शास्त्रास्त्र –

मौर्यकालीन अश्वारूढ़ सैनिक लम्बे माले और पदाति सेना की अपेक्षा छोटे ढालों से सज्जित होते थे।[36] छोटे ढाल अश्वारोहियों के लिए सुविधाजनक थे। वे इससे सज्जित होकर आसानी से सवारी कर सकते थे और साथ ही युद्ध में कुशलता पूर्वक आयुध का उपयोग कर सकते थे। ढाल छोटे होने के साथ हल्के होते थे, जो गतिशीलता में बाधक न थे। रोमिला थापर ने एरियन के द्वारा बताये गये साक्ष्यों को आधार मानकर अश्वारोही सैनिकों के दो ढालों से सज्जित होने का वर्णन किया है।[37] सम्भवतः अश्वारोही सैनिक एक को वक्षस्थल तथा दूसरे को पीठ पर लगाता रहा होगा ताकि दोनों तरफ से सुरक्षा हो सके। डॉ0 मुखर्जी भी घुड़सवारों की ढालों को पदाति सैनिकों की ढालों से छोटी बताते हैं। सांची तथा अन्य स्तूपों पर घुड़सवारों की ढालें प्रायः दो फीट लम्बी दिखाई गई हैं।[38]

इसके अतिरिक्त कोणार्क के मन्दिर पर विशाल अश्वारोही सेनाओं का अंकन है, जो शत्रु से मुख्य द्वार की रक्षा कर रहे हैं। इनमें सैन्य अश्व के गले में जंजीर का सुरक्षात्मक आभूषण, चारों पैरों में सुरक्षात्मक अलंकरण है तथा छाती बंधी हुई है। घोड़े की काठी में एक छोटा तलवार तथा बंधा हुआ वाण भी दिखाया गया है। सम्भवतः छोटा

तलवार और बाण आपातकालीन अथवा रिजर्व शस्त्र रहे होंगे। प्रत्येक हथियार के नष्ट हो जाने पर ये काम में लाये जाते रहे होंगे। हाथ से फेके जाने वाले वाण को कर्पण कहते थे। यह सौ धनुष की दूरी तक फेंका जा सकता था। खनित्र (फावड़ा), कुदाल, काण्डच्छेदन (एक प्रकार का बड़ा कुल्हाड़ा) भी तत्कालीन सैन्य हथियार थे।

अश्वारोही सेना की साज–सज्जा–

एरियन ने भारतीय अश्वारोही सैनिकों को जीन न कसने और मुँह में लगाम न लगाने का उल्लेख किया है। लेकिन मैगस्थनीज इसका खण्डन करता है। यह घोड़े की चाल को नियंत्रित रखने के लिए लगाम तथा बाग का उल्लेख करता है। उसके कथन की पुष्टि सांची की मूर्तियों से होती है।[39] मैकूण्डल ने भी घोड़ों के लगाम आदि का वर्णन किया है।[40] दीक्षितार ने युद्धरत अश्वों को गहनों तथा जीन से अलंकृत करने की प्रथा का उल्लेख किया है।[41] गेहूँ की पत्ती और तेल नाखून वाली लोहे की तेज पत्तिया अलंकरण के साथ–साथ सुरक्षा प्रदायिनी थी।' ये अलंकरण सुरक्षात्मक दृष्टि से भी उपयोगी थे।[42]

मौर्य युग का पर्यालोचन करने से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन युग में सैन्य संगठन अत्यन्त सुव्यवस्थित था। अश्व सैन्य संगठन की विशेष मान्यता थी। इसके लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी, परन्तु भारतीय अश्व–युद्ध कला विदेशी अश्व युद्ध कला की तुलना में समुन्नत नहीं थी। मौर्य युगीन सैनिक संगठन में यूनानियों से सम्पर्क के कारण युद्धों में अश्व सेना के महत्व को प्रथम बार गम्भीरतापूर्वक स्वीकार किया गया।

सन्दर्भ–

1. मुद्रा राक्षस–विशाखदत्त–तृतीय अंक–अनुदित डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, पृ0 178। विशाखदत्त, अनुदित अनुदित डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–1
2. आर0पी0 कांग्ले– कौटिलीय अर्थशास्त्र–भाग–1–पृ0 85, उदयवीर शास्त्री–कौटलीय अर्थशास्त्र–भाग–2, पृ0 307। मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास, अध्यक्ष– संस्कृत पुस्तकालय, 2736, कूचना चैला, दरियागंज, दिल्ली–6, 1969
3. कांग्ले–अर्थ0–भाग 1–पृ0 86, शास्त्री –अर्थ–भागब–2, पृ0 308 प्रकाशक– युनिवर्सिटी आफ बाम्बे, 1960, मेजर आर0सी0 कुलश्रेष्ठ–कौटिल्या हिज फिलासफी आफ वार–पृ0 10, डॉ0 आर0के0 मुखर्जी– चन्द्र गुप्त एण्ड हिज टाइम्स– पृ0 172, मोती लाल बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी, पटना 1960
4. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1–86, शास्त्री–अर्थ0 भाग–2, पृ0 316–18, मेजर आर0सी0 कुलश्रेष्ठ–कौटिल्या हिज फिलासफी आफ वार– पृ0 11
5. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 87, उदयवीर शास्त्री–भाग–2, पृ0 309, 310
6. कांग्ले– अर्थ0 भाग–1, पृ0 86, शास्त्री–अर्थ0 भाग–2, पृ0 307–308
7. कांग्ले– अर्थ0 भाग–1, पृ0 86, शास्त्री–अर्थ0 भाग–2, पृ0 308, 309
8. डॉ0 आर0के0 मुखर्जी– चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ0 172, 173
9. जय चन्द्र विद्यालंकार– भारतीय इतिहास की रूपरेखा– पृ0 729, (जिल्द दो) हिन्दुस्तानी एकेडमी, यू0पी0 इलाहाबाद, 1942
10. आर0पी0 कांग्ले– अर्थ0–भाग–1, पृ0 87, शास्त्री–अर्थ0 भाग–2, 310–13

11. विशेष पुरूषों के द्वारा सिखलाए जाने पर युद्ध सम्बन्धी प्रत्येक कार्य को अच्छी तरह कर लेना घोड़े का सान्नाह्य कर्म कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जो घोड़े युद्ध के लिए उपयोग में लाए जाते हैं उनको उन सबकी शिक्षा दी जाये, जिसकी कि युद्ध में आवश्यकता होती है।
12. साधारण सवारी या खेल सम्बन्धी कार्यों को औपवाह्य कहते हैं।
13. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 87, 88, शास्त्री–अर्थ0–भाग–2, पृ0 313–315।
14. कांगो वारिकांगो मायूरो र्धमायूरी नाकुलो वाराहो र्धवारात्रेति धोरणः।
15. संज्ञा प्रति कारोनारोष्ट्र इति।
16. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 88, शास्त्री–अर्थ0–भाग–2, पृ0 315–18।
17. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 87, शास्त्री–अर्थ0–भाग–2, पृ0 309–310।
18. अर्थ0, अध्याय 30 श्लोक 18–शतांगुल परिणाहः।
19. अर्थ0, अध्याय 30, श्लोक 19–पंचमागावरं मध्यमाछरयौः।
20. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 88, शास्त्री–अर्थ0–भाग–2, पृ0 315–319।
21. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 87, शास्त्री–अर्थ0–भाग–2, पृ0 311–313।
22. पी0सी0 चक्रवर्ती–द आर्ट आफ वार इन एन्सिएण्ड इण्डिया– पृ0 37। ढाका 1941, ओरियण्टल पब्लिशर्स, 1488, पटौदी हाउस, दरियागंज, दिल्ली–6
23. डॉ0 आर0के0 मुखर्जी–चन्द्र गुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स– पृ0 173, 174।, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली, वाराणसी, पटना–1960।
24. मुद्राराक्षस– श्लोक 2., पृ0 48।
25. पी0सी0 चक्रवर्ती–द आर्ट आफ वार इन एन्सिएण्ट इंडिया, पृ0 44।
26. जे0 डब्लू0 मेक्रीण्डल– एन्सिएण्ट इंडिया ऐज डिस्काइन्ड बाई मैगस्थनीय एण्ड एरियन– पृ0 89। प्रकाशक– वी0एल0 चक्रवर्ती, चक्रवर्ती, चटर्जी एण्ड कौ0 लि0 15 कालेज स्क्वायर, कलकत्ता 1966।
27. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 237, शास्त्री–अर्थ0–भाग–3, पृ0 147।
28. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 238, शास्त्री–अर्थ0–भाग–3, पृ0 148।
29. परिपूर्णानन्द वर्मा– प्राचीन भारत की शासन प्रणाली– पृ0 224।
30. पी0ी0 चक्रवर्ती, द आर्ट आफ वार इन एन्सिएण्ट इंडिया, पृ0 35
31. इन्दा–आइडियोलाजी आफ वार इन एन्सिएण्ट इंडिया, पृ0 35। विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, 1957
32. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 239, शास्त्री–अर्थ0–भाग–3, पृ0 149।
33. मेजर आर0सी0 कुलश्रेष्ठ– कौटिल्या– हिज फिलासफी आफ वार–पृ0 16।
34. ले0 कर्नल गौतम शर्मा– इंडियन आर्मी थ्रू द एजेज– पृ0 26।
35. कांग्ले–अर्थ0–भाग–1, पृ0 241, शास्त्री–अर्थ0–भाग–3, पृ0 161।
36. जे0 डब्लू0 मैकण्डल–एन्सिएण्ट इंडिया ऐज डिस्काइन्ड बाई मैगस्थनीय एण्ड एरियन– पृ0 226। प्रकाशक– वी0एल0 चक्रवर्ती, चक्रवर्ती, चटर्जी एण्ड कौ0 लि0 15 कालेज स्क्वायर, कलकत्ता 1960।
37. रोमिला थापर–अशोक एण्ड द डिक्लाइन आफ मौर्याज–पृ0 75। आक्सफोर्ड प्रेस, 1961
38. डॉ0 राधा कुमुद मुखर्जी– चन्द्र गुप्त और उसका काल– पृ0 171। किताब महल प्राइवेट लि0 56–ए, जी टी रोड, इलाहाबाद, 1966।
39. डॉ0 आर0के0 मुखर्जी– चन्द्र गुप्त मौर्य और उसका काल, पृ0 173।
40. जे0 डब्लू0 मैकण्डल– एन्सिएण्ट इंडिया ऐज डिस्काइन्ड बाई मैगस्थनीय ज एण्ड एरियन– पृ0 226।
41. दीक्षितार– वार इन एन्सिएण्ट इंडिया, पृ0 128। सेकेण्ड एडिसन, मद्रास, 1948।
42. दीक्षितार– वार इन एन्सिएण्ट इण्डिया, पृ0 133।